INTERNATIONAL NEWS AND VIEW CORPORATION
INVC
अंतरराष्ट्रीय समाचार एवं विचार निगम

महिला दिवस का स्वांग और महिलाओं के वास्तविक हालात

By : INVC Team Published On : 8 Mar, 2016 10:03 AM IST

- सोनाली बोस -

आज हम सभी एक बार फिर 8 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मना रहे हैं। "अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस" इस नाम से ना जाने क्यूं मुझे बड़ी कोफ़्त सी महसूस होती है। एक बेचारगी का भाव उत्पन्न होता है और कुछ यूं लगता है मानो कोई अपने अस्तित्व को अपनों के ही बीच तलाशने की जद्दोजहद में कुछ इतना ज़्यादा खो गया है कि अब उसे उसके 'होने' को याद दिलाना पड़ता है। एक विशेष दिन के रूप में याद किया जाना कितना विचित्र भाव लिए होता है न। एक ओर तो कई लोग मानते हैं कि एक विशेष दिन मनाना आपके 'विशिष्ट' होने का प्रमाण है। वहीं मुझे लगता है कि जिस तरह 'मज़दूर दिवस', 'विकलांग या दिव्यांग दिवस', आदि मनाया जाता है उसी फेहरिस्त में 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस' भी मनाया जाता है।

वैसे न जाने क्यों आज 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस' से मुझे 'विश्व हिंदी दिवस' की भी याद आ गई। आख़िर क्यों मनाते हैं हम ये दिवस ? क्यों 'अंतरराष्ट्रीय पुरुष दिवस' या 'विश्व अंग्रेज़ी दिवस' नहीं होते ? क्या इस वजह से कि आज भी महिला और हिंदी बेचारी है ? आज भी उनकी ओर ध्यान दिलाए जाने की ज़रूरत है ?हर साल महिला दिवस मनाया जाता है, लेकिन एक स्त्री और एक स्त्री होने के नाते मेरे लिए इसके क्या मायने हैं ? उम्र के हर पड़ाव में इस सवाल का जवाब मेरे लिए बदलता रहा है। मैं दुनिया भर की सभी महिलाओं की प्रतिनिधि तो नहीं हूँ लेकिन मेरे आत्मसम्मान को तब बहुत ठेस पहुँचती है जब मुझ पर 'दुखिया' या 'बेचारी' या 'वंचित' या 'अबला' का ठप्पा लगाया जाता है। इसमें शक नहीं है कि आज भी अनगिनत महिलाएँ जीवन की मूलभूत सुविधाओं से वंचित हैं। लेकिन दुखियारे पुरुष भी तो हैं। ग़रीबी और अशिक्षा सबसे बड़े अभिशाप हैं और वे लिंगभेद नहीं करते। तो फिर ऐसी क्या मजबूरी है कि सिर्फ 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस' ही मनाया जाता है और 'अंतर्राष्ट्रीय पुरूष दिवस' नहीं ?

आज भी याद आता है कि जब कॉलेज में थी और टीवी या अखबार में जब महिला दिवस के नाम पर होने वाले भाषणों और लेखों को देखती पढ़ती थी तो लगता था कि वाह हमारे लिए ये दुनिया और समाज कितना कुछ सोचता और करता है। कभी कहीं इस अवसर पर आयोजित किसी रैली के बारे में पता चलता था तो लगता था कि महिला दिवस की रैली में जाकर दुनिया बदल जाएगी, एक तरह का आदर्शवाद था जो भयानक तरह से मुझ पर तारी था। फिर एक समय वो भी आया जब लगने लगा कि इससे कुछ नहीं होने वाला और मायूसी छाने लगी। फिर महसूस होता है कि साल में एक बार इस तरह का दिन मनाए जाने से बेहतर होगा कि साल के 365 दिन समाज के उन उपेक्षित वर्गों को समर्पित किए जाएँ जिनकी ओर न किसी सरकार का ध्यान जाता है और न ही व्यवस्था का। अब उम्र के इस मोड़ पर आकर मेरा मानना है कि मायूसी से भरी इस सोच से कतई फ़ायदा होने वाला नहीं है कि समाज में कोई बदलाव नहीं आएगा।

एक सवाल बार बार ज़हन में उठता है कि आख़िर, अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की उपलब्धि क्या होती है ? जगह जगह

समारोह भाषणबाज़ी, दिखावे के बड़े बड़े संकल्प और झूठे वायदे ? और फिर हालात जस के तस । लेकिन इस सबके बावजूद अगर एक सकारात्मक बात है तो वो यही है कि महिला दिवस के बहाने साल में एक दिन ही सही, कम से कम महिलाओं से जुड़े मुद्दों पर कुछ रोशनी तो पड़ती है, मीडिया में भी चर्चा होती है और शायद हम सभी महिलायें इसी में ख़ुश भी हो जाती हैं । महिला दिवस जहाँ एक मौका है महिला शक्ति को सलाम करने का, वहीं रुककर उन महिलाओं के बारे में सोचने का भी मौका है जो बुरी स्थिति में हैं । उन असमानताओं के बारे में सोचा जाए जो आज भी समाज में है और हम उसके लिए क्या कर सकते हैं ।

समाज की जो एक अहम् बात जो सबसे ज्यादा परेशान करती है वो है हक़ों की असमानता –महिलाओं और पुरुषों के बीच । और ये ऐसे हक़ हैं जो बहुत सहजता से एक बच्ची को, एक स्त्री को मिल सकते हैं । कई बच्चियों को जन्म लेने का ही हक़ नहीं है- भारत में कई जगह लिंग अनुपात प्रति हज़ार पुरुष केवल 750 या 800 महिलाएँ हैं । क्या ये त्रासदी से कम नहीं है ? मेरी नज़र में सबसे बड़ा मुद्दा यही है कि वो इज़्ज़त, वो जगह जो किसी भी स्त्री का हक़ है, उसे आज भी नहीं मिल पाया है । मैं आज बोल पा रही हूँ, इन मुद्दों को लेकर आज बहस भी कर रही हूँ और आगे बढ़ कर कुछ कर रही हूँ लेकिन मेरी-आपकी तरह हर महिला को ये अधिकार नहीं है।

समाज में किसी भी बदलाव को लाने और अपनाने के लिए जो सबसे ज़रूरी चीज़ है वो है मानसिकता । आज समाज और दुनिया में जिस भी तरह की असमानताएं व्याप्त हैं, महिलाओं के प्रति जो अपराध हो रहे हैं उसका मूल कारण हमारी मानसिकता ही है। कहने को तमाम क़ायदे क़ानून समाज में ज़रूर हैं लेकिन जब तक लोगों की ये मानसिकता नहीं बदलेगी कि महिलाओं के ख़िलाफ़ आप अपराध कर सकते हैं और फिर बाख कर निकल सकते हैं तब तक कुछ भी बदलना बहुत मुश्किल है । पहले तो उसे जन्म लेने का, जीने का, साँस लेने का अधिकार हो। फिर उसे कुपोषण से बचाया जाए। भारत में 6-14 वर्ष आयुवर्ग की लड़कियों पर किए गए एक अध्ययन के अनुसार कोलकाता में उनमें से 95 प्रतिशत, हैदराबाद में 67 प्रतिशत, दिल्ली में 73 प्रतिशत और चेन्नई में 18 प्रतिशत अनीमिया यानी ख़ून की कमी का शिकार हैं।

इसके अलावा उसकी शिक्षा का पूरा इंतज़ाम हो ।

एक पुरानी कहावत है कि एक पुरुष को शिक्षित बनाने का अर्थ है एक व्यक्ति को शिक्षित बनाना। जबकि अगर घर की महिला शिक्षित हो तो पूरा परिवार शिक्षित होता है। आज भी अगर कहीं कोई महिला या बच्ची बलात्कार का शिकार होती है तो समाज और इज़्ज़त गंवाने के डर से ये मामले घर के बाहर की दहलीज़ लांघ ही नहीं पाते हैं, पुलिस स्टेशन तक पहुँचना तो बहुत दूर की बात है। दुर्भाग्यवश ये मानसिकता बहुत-बहुत धीरे-धीरे बदल रही है। इसके लिए कोई दवा तो है नहीं कि आप खा लें और मानसिकता बदल जाए।

इस मानसिकता को बदलने के लिए हर एक माध्यम की ज़रूरत है- क़ानून, राजनीतिक इच्छाशक्ति, घर का माहौल,मीडिया, फ़िल्म। जब हर स्तर पर मानसिकता बदलेगी, तब जाकर समाज में इसका कुछ असर दिखाई देगा। अक़सर संसद में महिलाओं के लिए आरक्षण की बात उठती है। पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण हासिल है। आज भी कई ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जहां राजनीती में महिलाओं को सिर्फ एक रबर स्टाम्प की तरह इस्तेमाल किया जाता है और जहां सारे हक और फैसले पुरूष ही लेता है। आगे भी शायद ऐसे कई मौके आएँगे जब कोई पति या भाई घर की महिला को रबर स्टैंप की तरह आगे कर देगा और उसके ज़रिए अपने मन के फ़ैसले करवाएगा।

लेकिन मुझे यकीन है कि ऐसे कई किस्सों के बाद कुछ महिलाएँ ऐसी भी आगे आएँगी जो कहेंगी कि वे रबर स्टैंप बनने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए संसद या पंचायत में महिलाओं के लिए आरक्षण ज़रूरी है ताकि उनका नज़रिया

दुनिया के सामने आ सके। दुनिया की आधी-आबादी महिलाओं की है, तो अगर आधा नहीं तो कम से कम 33 फ़ीसदी हक़ माँगने में तो कोई बुराई नहीं है। लड़कियों की शिक्षा पर बहुत ज्यादा ध्यान न दिए जाने के बावजूद आँकड़े बताते हैं कि भारत में महिला डॉक्टरों, सर्जनों, वैज्ञानिकों और प्रोफ़ेसरों की तादाद अमरीका से ज्यादा है। अगर इतने विपरीत माहौल के बावजूद हमारे आंकड़े इतने सुखद हैं तो ज़रा सोचिये थोड़ा सा सहारा या सहायता महिला को किन उचाईयों तक ले जा सकता है । लेकिन ये सहारा 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस' मनाने से नहीं मिलेगा वरन ये मिलेगा अपने आसपास के परिवेश के बदलने से, अपने घर परिवार के मानसिक बदलाव से । जिस दिन माता पिटा अपनी बेटी को बोझ समझना बंद करके बेटे के बराबर का हक देने लगेंगे स्थितियां बदलने को मजबूर हो जायेंगी ।

एक बात बहुत ध्यान देने लायक है कि बेटियाँ वही बनती हैं जो उनके माता-पिता उन्हें बनाना चाहते हैं, और अगर उन महिलाओं के माता-पिता चाहते तो उन्हें भी वो सब मिल सकता है जिसका हक उन्हें प्रकृति और इंसान रूप में जन्म लेने से मिला है । आज महिला का मुक़ाबला पुरुष से नहीं है । वह समानता चाहती है महिला से ही । शहरी महिला और ग्रामीण महिला की खाई बहुत व्यापक है । सुविधाएँ शहरो में पढ़ी-लिखी महिलाओं तक पहुँच रही हैं लेकिन गाँव की अनपढ़ महिला आज चाहे सरपंच की कुरसी पर बिठा दी जाए, वह आत्मनिर्भर नहीं है। आख़री में बस यही कह कर अपनी बात खत्म करना चाहूंगी कि अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस तभी सार्थक हो सकता है जब महिलाओं को एक खांचे में न रख कर उन महिलाओं की तलाश की जाए जिन्हें रास्ता दिखाने वाला कोई नहीं है और फिर उन पर ही ध्यान केंद्रित किया जाए।

लेकिन यह काम करेगा कौन ? हम और आप जैसे लोग ही न.... तो इंतज़ार किस बात का है ?

About the Authoress

Sonali Bose

Senior journalist and Authoress

Associate editor international News and Views.Com & International News and Views Corporation

संपर्क –: sonalibose09@gmail.com

आप इस लेख पर अपनी प्रतिक्रिया newsdesk@invc.info पर भेज सकते हैं । पोस्ट के साथ अपना संक्षिप्त परिचय और फोटो भी भेजें ।

URL : https://www.internationalnewsandviews.com/womens-day-farce-and-the-actual-situation-of-women/

12th year of news and views excellency

Committed to truth and impartiality

Copyright © 2009 - 2019 International News and Views Corporation. All rights reserved.

www.internationalnewsandviews.com